ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 36-40

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

पर्यावरण प्रदूषण की चुनौतियाँ और समाधान

रतन कुमारी वर्मा

एसोशिएट प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कालेज,
इलाहाबाद (उ0प्र0), भारत

सारांश : *जैव जगत की नियामक सत्ता का नाम पर्यावरण है। समस्त सौर मण्डल में पृथ्वी ही केवल एक ऐसा ग्रह है जिस पर समस्त पौधों एवं प्राणियों के जीवन के विकास के लिए अनुकूल पर्यावरण उपलब्ध है। इसी पर्यावरण के ही कारण पृथ्वी को जीवित जगत (Living Earth) होने का गौरव प्राप्त है। सृष्टि की सर्वोत्तम रचना मानव है। मानव सहित समस्त जीवधारी, जिसमें पेड़–पौधे, जीव–जन्तु सभी समाहित हैं, इसी पर्यावरण की देन हैं। मनुष्य की समस्त अनुक्रियायें यथा आधारभूत आवश्यकताएं– भोजन, वस्त्र और मकान, प्रमुख व्यवसाय (Occupation) सभी का प्रत्यक्षतः सम्बन्ध पर्यावरण से ही है। पर्यावरण के बिना जीवन सम्भव नहीं है।*

भूगोल विषय में पर्यावरण का अध्ययन विषय के उद्भव काल से ही होता रहा है। स्ट्राहलर (A.N. Strahler & A.H. Strahler, 1976) के अनुसार– सभी भूगोलवेत्ता मानव के पर्यावरण से ही जुड़े रहे हैं, किन्तु मानव को जीवन के अन्य रूपों पेड़–पौधे व जीव–जन्तु से अलग नहीं किया जा सकता।[1]

कुंजी शब्द– नियामक सत्ता, पर्यावरण, समस्त, सौर मण्डल, अनुक्रियायें, आवश्यकताएं, भोजन, व्यवसाय ।

प्राकृतिक संसाधनों के अधिकाधिक एवं अविवेकपूर्ण विदोहन तथा प्रौद्योगिकी में विकास के कारण पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न होने लगीं। इन समस्याओं का विभिन्न रूपों में प्रतिफलन होने लगा, ओजोन क्षरण, भूमण्डलीय उश्मन एवं विभिन्न प्रकार के प्रदूषण यथा– वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आदि। 1960 एवं 1970 के दषक में विकसित देशों का ध्यान इस तरफ आकर्षित हुआ। मानव एवं प्रकृति में सन्तुलित विकास के लिए पर्यावरण संरक्षण को आवश्यक महसूस किया जाने लगा। अतः सबसे पहले पर्यावरण के अर्थ को समझना होगा।

पर्यावरण का अर्थ (Meaning of Environment) –शब्दकोश (Dictionary) के अनुसार, पर्यावरण का सामान्य अर्थ है– भौतिक परिवेश (Physical setting) पर्यावरण शब्द दो शब्दों से मिल कर बना है– परि+आवरण। जिसका अर्थ है– चारों ओर से घेरने वाली दशाएं। इसमें मानव पेड़–पौधों व जन्तुओं के विकास तथा वृद्धि को प्रभावित करने वाली वाह्य दशायें सम्मिलित हैं। विभिन्न विद्वानों ने पर्यावरण को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है।

पार्क (C.C. Park, 1980) के अनुसार– ''किसी निष्चित स्थान व काल में मानव को घेरने वाली दषाओं का कुल योग ही पर्यावरण कहलाता है।''[2]

हर्सकोविट्स (Herskovits) के अनुसार – ''पर्यावरण सम्पूर्ण वाह्य परिस्थितियों और उसका जीवधारियों पर पड़ने वाला प्रभाव है जो जैव जगत के विकास चक्र का नियामक है।''[3]

यूनिवर्सल विश्वकोश (Universal Encyclopedia) के अनुसार– ''पर्यावरण उन समस्त दशाओं, अभिकरणों तथा प्रभावों का योग है जो किसी जीव, जाति या प्रजाति के विकास, वृद्धि जीवन और मरण को प्रभावित करते हैं।''[4]

मैकाइवर (R.M. Maciver) के अनुसार– ''पृथ्वी का धरातल और उसकी समस्त प्राकृतिक दशाएं, प्राकृतिक संसाधन (भूमि, जल, पर्वत, मैदान, खनिज पदार्थ, पौधे, पशु) तथा प्राकृतिक शक्तियां जो पृथ्वी पर विद्यमान होकर मानव जीवन को प्रभावित करती हैं, भौगोलिक पर्यावरण के अन्तर्गत आती हैं।''[5]

सविन्द्र सिंह एवं आलोक दुबे (1983) के अनुसार– ''पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है तथा इसकी रचना भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों वाले पारस्परिक क्रियाशील तंत्रों से होती है। ये तंत्र पृथक–पृथक और सामूहिक रूप से विभिन्न रूपों में परस्पर समबद्ध होते हैं।''[6]

यह पर्यावरण जो मानव एवं जीव जगत के लिए इतना आवश्यक है, वह विभिन्न कारणों से प्रदूषित होता जा रहा है। अधिकांश लोगों का मानना है कि तीव्र गति से मनुष्य का विकास, शहरीकरण, भौतिक संसाधनों का अन्धाधुंध उपयोग, प्रौद्योगिकी का विकास, औद्योगिक क्रान्ति, प्राकृतिक संसाधनों का लोलुपतापूर्ण विदोहन, पदार्थ तथा ऊर्जा के विनिमय की बढ़ती दर, औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों, नगरीय मल–जल, न सड़ने–गलने वाली उपभोक्ता सामग्रियों के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि इसके प्रमुख कारण हैं। अतः प्रदूशण के अर्थ को भी समझना आवश्यक है।

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

National Environment Research Council (NERC), 1976 के अनुसार– ''मनुष्य के क्रियाकलापों से उत्पन्न अपशिष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थों एवं ऊर्जा के विमोचन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकारक परिवर्तनों को प्रदूषण कहते हैं।''[7]

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति की विज्ञान सलाहकार समिति ने प्रदूषण को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है– ''मनुष्य के कार्यो द्वारा ऊर्जा प्रतिरूप, विकिरण प्रतिरूप, भौतिक एवं रासायनिक संगठन तथा जीवों की बहुलता में किये गये परिवर्तनों से उत्पन्न्न प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभावों के कारण आस–पास के पर्यावरण में अवांछित एवं प्रतिकूल परिवर्तनों को प्रदूषण कहा जाता हैं।''[8]

Massachusetts Institute of Technology (MIT), 1970 के द्वारा निम्न रूप में परिभाषित किया गया– ''वस्तुओं के उत्पादन एवं उपभोग के प्रत्येक चरण में अपशिष्ट पदार्थो का जन्म होता है। अपशिष्ट पदार्थ उस समय प्रदूषण (Pollution) या पर्यावरणीय समस्या होते हैं जबकि उनका बायुमण्डलीय, महासागरीय या पार्थिव पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव प्रड़ता है।''[9]

R.E. Dasman (1973) के अनुसार– ''उस दशा या स्थिति को प्रदूषण कहते हैं जब मानव द्वारा पर्यावरण में विभिन्न तत्वों एवं ऊर्जा का इतनी अधिक मात्रा में संग्रह हो जाता है कि वे पारिस्थितिक तंत्र द्वारा आत्मसात करने की क्षमता से अधिक हो जाते हैं।''[10]

सविन्द्र सिंह (1991) के अनुसार– ''पर्यावरण प्रदूषण उसे कहते है जब मनुष्य के इच्छित या अनिच्छित कार्यों द्वारा प्राकृतिक पारिस्थिति तंत्र में इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि वह उसकी (पारिस्थितिक तंत्र) सहन–शक्ति से अधिक हो जाता है, परिणामस्वरूप पर्यावरण की गुणवत्ता में आवश्यकता से अधिक ह्रास होने से मानव समाज पर दूरगामी हानिकारक प्रभाव पड़ने लगता है।''[11]

तात्पर्य यह है कि विभिन्न कारणों से होने वाला यह प्रदूषण मानव एवं जीव–जगत के लिए बहुत बड़ी समस्या है और इस समस्या का समाधान संपोषित विकास के द्वारा ही सम्भव है। इस सम्पोषित विकास की अवधारणा को समझना भी अति आवश्यक है।

सामान्य रूप से विकास से तात्पर्य है– निम्न स्थिति से उच्च स्थिति की ओर गति करना, अर्थात् वर्तमान स्थिति में सुधार का होना। यह सुधार कभी मंद गति से होता है तो कभी तीव्र गति से। वस्तुतः विकास एक बहुआयामी संकल्पना है जिसके आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, संस्थागत, परिस्थितिकीय, नैतिक आदि विविध आयाम हैं। विकास को एक प्रक्रिया के रूप में समझाा जा सकता है। जिससे जनता की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है, मानव कल्याण में वृद्धि होती है और जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण

कार्यक्रम (UNEP) के अनुसार– ''विकास एक विस्तृत आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य समस्त जनसंख्या और इसके व्यक्तियों की खुशहाली में इस प्रकार का सुधार करना है कि विकास में और उससे उत्पन्न लाभों के वितरण में उनकी सक्रिय, स्वतन्त्र तथा सार्थक भागीदारी हो।''[12]

इस प्रकार विकास का अर्थ सबके कल्याण से है जिसमें सबके लिए स्वास्थ्य, शिक्षा काम सभी हों। केवल आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth) आधारित विकास को वास्तविक विकास नहीं कहा जा सकता। विकास का सीधान सम्बन्ध पर्यावरण संरक्षण से है। पर्यावरण संरक्षण और विकास दोनों अन्योन्याश्रित हैं। विकास की नवीन परिकल्पना का नाम ही संपोषणीय विकास है जिसमें विकास भी हो, भविश्य भी सुरक्षित रहे।

संपोषणीय विकास (Sustainable Development) से तात्पर्य है सतत् पोशणीय विकास अर्थात् ऐसा विकास जो मानव समाज की केवल तात्कालिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति न करे बल्कि वह स्थायी तौर पर भविष्य के लिए भी विकास का आधार प्रस्तुत करे। संपोशणीय विकास के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग प्रचलित है– ''टिकाऊ विकास, स्थिर विकास, स्थायी विकास, संधृत विकास, सतत् पोषणीय विकास, संपोषणीय विकास आदि। संपोषणीय विकास की संकल्पना मूलतः विकास की संकल्पना का संशोधित नवीन रूप है। यह संपोषणीय विकास प्रयत्नों में गुणवत्ता के विस्तार पर अधिक बल देती है। विकास प्रबन्धन का पारिस्थितिकीय केन्द्रित (Eco-cetric) उपागम मनुष्य की भौतिक समृद्धि एवं परिस्थितिकीय संतुलन पर बल देता है। न तो पारिस्थितिकीय व्यवस्था अक्षुण्ण है न मानवीय संस्थायें। एक न एक दिन इनका अन्त होना अवश्यम्भावी है। किन्तु काल का ज्ञात नहीं है। मानवीय संस्थाओं (Human Institutions) का आयुकाल (Longevity) पारिस्थितिकीय सिस्टम की स्थिरता पर निर्भर है और पारिस्थितिकीय स्थिरता मनुष्य के पारिस्थितिकीय सन्तुलन के संरक्षण के प्रति जिम्मेदारी पर निर्भर करती है।

प्रो0 सविन्द्र सिंह ने पोष्णीयता को इस प्रकार परिभाषित है।– ''पोष्णीयता एक संकल्पना है जो पारिस्थितिकीय कार्यों एवं पारिस्थितिकीय संसाधनों की स्थिर मांग को दर्षाती हैं ताकि एक तरफ तो विकास प्रबंधन के लिए पारिस्थितिकीय संसाधनों की सतत् आपूर्ति

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

होती रहे तो दूसरी तरफ पारिस्थितिकीय संतुलन बना रहे।''[13]

पोशणीय विकास पारिस्थितिकीय संसाधनों की लगातार बढ़ती मांग के साथ इस बात का पारिचायक है कि मनुष्य की भौतिक समृद्धि उतनी ही हो जिससे पर्यावरण की गुणवत्ता प्रभावित न हो और पारिस्थितिकीय सन्तुलन बना रहे। विभिन्न विद्वानों ने पोषणीय विकास को इस प्रकार परिभाषित किया है।

जी0 एच0 हर्लम (1987) के अनुसार– ''पोशणीय विकास एक उपागत है जो भविष्य में लोगों की मांग की पूर्ति करने की पर्यावरण की क्षमता के साथ वर्तमान समाज की इच्छाओं एवं मांगों (आवश्यकताओं) की पूर्ति करने का द्योतिक है।''[14]

डब्ल्यू0 पी0 कन्निघंम तथा एम0ए0 कन्निघंम (2000) के अनुसार– ''पोशणीय विकास मानव कल्याण में प्रगति को दर्शाता है जिसे हम मात्र कुछ वर्षों के बजाय दीर्घकाल तक कायम रख सकें। पोषणीय विकास का फल सम्पूर्ण मानव समाज को मिलना चाहिए न कि किसी खास वर्ग के लोगों को।''[15]

पोशणीय विकास की संकल्पना का आगमन लगभग 1970 से माना जाता है परन्तु इसका व्यापक प्रचार–प्रसार 'क्लब ऑफ रोम' द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'लिमिट टू ग्रोथ' के द्वारा सम्भव हुआ। जीरो ग्रोथ की संकल्पना का स्थान धीरे–धीरे संपोशणीय विकास की संकल्पना ने ले लिया।

पोशणीय विकास की संकल्पना का अर्थ विभिन्न अर्थो में ग्रहण किया जाता है।

1. पोषणीय विकास आर्थिक वृद्धि, पर्यावरण का संरक्षण, मानव स्वास्थ्य एवं प्रसन्न्ता की समन्वित प्राप्ति का लक्ष्य है।
2. पोषणीय विकास एक सिद्धान्त या पैराडाइम है जो सामाजिक–आर्थिक वृद्धि एवं पर्यावरण प्रबन्धन को सम्यक रूप से जोड़ता है।
3. पोषणीय विकास एक विशिष्ट प्रकार की कार्यप्रणाली का स्वरूप है जिसका निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य है–

– प्रभावी पोशणीय विकास की रणनीतियां।
– सुशासन (Good Governance)
– मनुष्य की आर्थिक वृद्धि, जीवन की गुणवत्ता में सन्तुलन तथा पर्यावरण की गुणवत्ता का परिक्षण (Preservation).

1987 में पर्यावरण और विकास (Environment and Development) पर ब्रंटलैण्ड कमीशन रिपोर्ट (Bruntland Commission Report) प्रकाशित हुई जिसमें विकास की वैकल्पिक विचारधारा के रूप में संपोषणीय विकास (Sustainable Development) की संकल्पना की व्याख्या की गई। ''इसमें विकास की ऐसी प्रणाली (पद्धति) अपनाने पर बल दिया गया है जिससे भावी पीढ़ियों के विकास पर आंच न आये। संपोशणीय विकास का तात्पर्य ऐसी विकास पद्धति से है जिसके द्वारा भावी पीढ़ियों की आवश्यकता पूर्ति की क्षमता से समझौता किये बिना ही वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति की जाये।''

संपोशणीय विकास की यह संकल्पना केवल पर्यावरण एवं संसाधन संरक्षण पर ही नही बल देती है अपितु संसाधनों के विकास एवं वृद्धि की भी बात करती है। यह मानव एवं पर्यावरण के मध्य किसी स्थायी स्थिति को बनाये रखने की पक्षधर नहीं है अपितु परिवर्तनशील प्रक्रिया की हिमायती है। केवल ध्यान यह रखना है कि समाज की वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं, संसाधनों, पूंजी एवं प्रौद्योगिकी में सामन्जस्य स्थापित हो। पृथ्वी तथा उसके पर्यावरण की सुरक्षा और पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाये रखने के उद्देश्य से ब्राजील के रियोडिजेनेरो नगर में संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन, 1992 में आयोजित किया गया। इसमें विकसित तथा विकासशील देशों के 178 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसे प्रथम पृथ्वी सम्मेलन या रियो सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है। इस सम्मेलन में कार्यक्रम–21 (Agenda-21) के नाम से जो रूपरेखा प्रस्तुत की गई उसमें संपोषणीय विकास के सिद्धान्त भी दिये गये। जिसमें पहला सिद्धान्त यह बताया गया– ''प्रकृति के साथ सामन्जस्य में संपोषणीय विकास के केन्द्र में मानव वर्ग होते हैं।'' आगे कहा गया है– पर्यावरण सुरक्षा विकास की अभिन्न अंग होगी और शांति, विकास और पर्यावरणीय सुरक्षा अन्योन्याश्रित तथा अविभाज्य है।''[16] कार्यक्रम–21 (Agenga-21) पर्यावरण एवं पोशणीय विकास सम्बन्धी एक विस्तृत दस्तावेज है। इसमें इक्कीसवीं सदी में तथा उसके आगे राष्ट्रों के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का भी उल्लेख है।

द्वितीय पृथ्वी सम्मेलन (जून 1997) न्यूयार्क में कोई ठोस समझौता नहीं हो सका। तृतीय पृथ्वी सम्मेलन (अगस्त–सितम्बर 2002) दक्षिण अफ्रीका की राजधानी जोहान्सवर्ग में आयोजित किया गया। इसका मुख्य विषय ही था– सतत् पोषणीय विकास। इसी कारण सम्मेलन (World Summit on Sustainable Development) के नाम से भी जाना जाता है। भारत यदि विकासशील देशों ने यह मुद्दा बड़ी मजबूती से उठाया कि अति उत्पादन और अति उपयोग पोषणीय नहीं है। विकसित देशों का उपयोग स्तर बहुत ऊंचा है। यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के उपभोग स्तर के बराबर अन्य देश भी उपभोग करने लगें तो पृथ्वी पर जितना संसाधन है वह बहुत ही कम पड़ जायेगा। अतः

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

विकसित देशों को अपने जीवन शैली में सुधार करना चाहिए ताकि सतत् पोषणीय विकास के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके। लेकिन विकसित देश सहमत नहीं हुए। केवल इस बात पर सहमति बन पायी कि उत्पादन तथा उपभोग को सतत् पोषणीय बनाने के लिए 10 वर्शीय कार्यक्रम बनाया जायेगा।

संपोशणीय विकास के समक्ष चुनौतियां एवं सुझाव –

1. खाद्यान्न संकट का समुचित समाधान– जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्यान्न उत्पन्न हुआ। जिसका हल हरित क्रान्ति के माध्यम से ढूंढा गया। इससे खाद्य समस्या का निवारण जो हुआ लेकिन पारिस्थितिकीय संकट उत्पन्न हुआ। इसके समाधान के लिए जैविक कृषि पर बल दिया जा रहा है। हरी खाद एवं जैविक खाद के प्रयोग से मिट्टी को भी अनुपजाऊ बनाने से रोका जा सकता है। तथा स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थ खाद्यान्न उपलब्ध किया जा सकता है।

2. ऊर्जा संकट का निवारण– कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक आदि जीवाश्म, ईधन तथा परमाणु ईधनों के जलने से उत्सर्जित गैसों से पर्यावरण का संकट बढ़ रहा है। ये संसाधन सीमित भी है और कुछ ही दशकों में समाप्त भी हो सकते है। जल विद्युत इसका समाधान है लेकिन जल विद्युत के उत्पादन से भी अन्य पर्यावरणीय समस्यायें जैसे वन–विनाश, बाढ़, भूकम्प आदि उत्पन्न होते हैं। अतः इसके स्थान पर गैर परम्परागत स्त्रोतों जैसे सौर ऊर्जा, बायोमास, बायोगैस ऊर्जा, पवन ऊर्जा, तरंग ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा को अपनाने की आवश्यकता है।

3. वन–विनाष को रोकना तथा वानिकी को प्रोत्साहित करना– जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि भूमि का विस्तार, नगरीकरण, सड़क निर्माण, बांध परियोजना, विद्युत की स्थापना आदि के कारण वन क्षेत्र घटता जा रहा है। वन क्षेत्र में कमी के कारण बाढ़, सूखा, मृदा अपरदन, मरूस्थलीकरण आदि पारिस्थितिकीय समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं। इसके लिए वनों की कटाई पर कड़े प्रतिबन्ध लगाये जायें। कृषि वानकी एवं सामाजिक वानिकी जैसे कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जाये।

4. लवणता एवं जलभराव की समस्या का निदान– विकासशील देशों में कृषकों की अज्ञानता तथा जल प्रबंधन में अभाव के कारण मिट्टी में लवणता की वृद्धि एवं जलभराव की समस्या उत्पन्न हो रही है। मिट्टी की उर्वरता नष्ट हो रही है। भूमि अनुपजाऊ होती जा रही है। इस प्रकार की समस्या नहरों के किनारे ज्यादा उत्पन्न हो रही है। पंजाब में नहरों में जल के रिसाव से भूमिगत जलस्तर में वृद्धि से उत्पादकता पर बुरा असर पड़ रहा है। इसी प्रकार बिहार तथा उत्तर प्रदेश में ट्यूबेल तथा पंपिंग सेटों से सिचाई करने से भू–गर्भ से धरातल पर अधिक जल खींच लाने के कारण गर्मियों में जलस्तर काफी नीचे चला जाता है। इससे पेय जल की समस्या उत्पन्न हो जाती है। सतत् पोषणीय विकास की दृष्टि से उचित जल प्रबंधन की आवश्यकता हो गयी है। जल की बर्बादी को रोकने के लिए जागरूकता कार्यक्रम की आवश्यकता है।

5. पर्यावरण प्रदूषण पर प्रभावी नियंत्रण हेतु जन– जागरूकता आवश्यक– पर्यावरण प्रदूषण एक मानव जनित समस्या है जो विकसित तथा विकासशील सभी देशों में पायी जाती है। पर्यावरण प्रदूषण विभिन्न प्रकार का है, जैसे– जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण आदि। पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण के लिए आवश्यक है कि प्रदूषण उत्पन्न करने वाले स्त्रोत पर नियंत्रण किया जाये तभी स्थायी हल सम्भव है। इसके लिए प्रदूषण उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों एवं संस्थाओं को जिम्मेदारी लेनी होगी। पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न होने वाली हानियों से जनता को जागरूक करना होगा ताकि जनता पर्यावरण संरक्षण हेतु जन–आन्दोलन चलाये।

6. अपशिष्ट पदार्थो का उचित समायोजन–बड़े–बड़े महानगरों में औद्योगीकरण के कारण अत्याधिक मात्रा में अपशिष्ट पदार्थ निकलते है। कारखानों से निकलने वाले कचरों तथा नगर के कूड़ें–कचरें को समाप्त करने का उचित प्रबन्धन होना चाहिए क्योंकि इनसे निकलने वाले विविध प्रकार के अवांछित तत्व भू–जैव रसायन चक्रों में प्रविष्ट हो जाते है और पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन पैदा करते है। प्लास्टिक, पॉलिथीन, रबड़, कांच आदि संश्लिष्ट पदार्थ पूर्ण रूप से विनष्ट न होने के कारण पर्यावरण में प्रदूषण पैदा करते हैं। उद्योगों के अतिरिक्त खदानों, खेतों, निर्माण कार्यो, घरेलू उपयोग से भी काफी कचरा निकलता है जिसका सही निस्तारण न होने से प्रदूषण उत्पन्न होता है।

सतत् पोषणीय विकास के अनुसार अवशिष्ट पदार्थों तथा कूड़ा–कचरा को कच्चे माल के रूप में प्रयोग की परम्परा विकसित करनी चाहिए। नगरीय गंदे जल का शोधन करके सिंचाई में उपयोग किया जाना चाहिए। मल को उपचारित करके उर्वरक निर्माण की प्रक्रिया अपनायी जानी चाहिए। औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों का उपयोग सहायक एवं आश्रित उद्योगों में कच्चेमाल के रूप में होना चाहिए। उपर्युक्त विधियों का प्रयोग करके पर्यावरण संरक्षण में संपोषित विकास की भूमिका को महत्तपूर्ण बनाया जा सकता है। पर्यावरण को प्रदूषित करने वाला मानव ही है और पर्यावरण को संपोषित करने का दायित्व भी मानव का ही है। इसके लिए मानव में नैतिक मूल्यों के संरक्षण की

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

महती आवश्यकता है। वर्तमान समय में नैतिक मूल्यों का क्षरण होने से निरन्तर भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिल रहा है। वनों का नाश हो रहा है। पेड़ों को काटकर जेब भरने की प्रवृत्ति का प्राधान्य हो रहा है। पेड़ काटने के स्थान पर नये पेड़–पौधे लगाने की परम्परा की चेतना का ह्रास हो रहा है। प्राचीनकाल में वृक्षों को देवता मानकर उनकी पूजा की जाती थी। उन्हें जल से सिंचित किया जाता था। विशेषकर स्वास्थ्यद दीर्घजीवी वृक्षों जैसे– पीपल, नीम, बरगद, पाकड़ आदि को प्रतिदिन जल चढ़ाने की परम्परा थी जिसमें स्व–कल्याण के साथ–साथ जन–कल्याण की भी भावना निहित थी। नैतिक मूल्यों को अपनाकर ही मनुष्य पर्यावरण संरक्षण में संपोषित विकास की अवधारणा को और अधिक महत्वपूर्ण बना सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अलका गौतम– संसाधन एवं पर्यावरण, पर्यावरण, पृष्ठ 242, षारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. वही, पृ. 243 ।
3. वहीं, पृ. 243 ।
4. डॉ0 एस0डी0 मौर्य– संसाधन एवं पर्यावरण, पर्यावरण एवं इसके संघटक, पृ. 216, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
5. डॉ0 अलका गौतम– संसाधन एवं पर्यावरण, पर्यावरण, पृष्ठ 243, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
6. डॉ0 एस0डी0 मौर्य– संसाधन एवं पर्यावरण, पर्यावरण एवं इसके संघटक, पृ. 217, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. वहीं, पृ. 331 ।
8. सविन्द्र सिंह– पर्यावरण भूगोल, पर्यावरण प्रदूषण, पृ. 481, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
9. वहीं, पृ. 482 ।
10. वही, पृ. 482 ।
11. वहीं, पृ. 482 ।
12. डॉ0 एस0डी0 मौर्य– संसाधन एवं पर्यावरण, पर्यावरण एवं इसके संघटक, पृ. 364, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
13. सवीन्द्र सिंह– पर्यावरण भूगोल, पर्यावरण नियोजन एवं प्रबन्धन, पृ. 530 प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
14. वहीं, पृ. 530 ।
15. वहीं, पृ. 530 ।
16. डॉ0 एस0डी0 मौर्य– संसाधन एवं पर्यावरण, पर्यावरण एवं इसके संघटक, पृ. 369, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

*****